अतृप्त सीमाएँ

- by ***Mr P.K. Chopra*** *Former General Manager, Indian Bank*

छोटे - छोटे झोंपड़ों के
मध्य से उठता धुआँ
आकाश की नीलिमा पर
कालिख पोत गया ।

साँझ उतर आई
अनमनी सी पाँव पटकती
मनुष्य की भूमि पर
जहाँ वह
गंदी कीचड़ की नाली में सने
हाथों से
कोलतार की सड़क पर
अपना उज्ज्वल भविष्य
अंकित कर रहा ।

यौवन का कहीं नाम-निशान नहीं
बढ़ापे की देहरी पर पाँव रखता
अपंग जीवन
टूटे वीरान खंडहरों की
बेजान प्रतिमाओं की
समता के योग्य भी नहीं रहा ।

मनुष्य के हाथों तराशे
इन पत्थरों को
समय की आँधियाँ
अस्थिर नहीं कर सकी
लेकिन मनुष्य के अस्तित्व को
समय की पोटली ने
कितनी ही बार
अपने में समेटा हैं

केवल नहीं बंधी -
मनुष्य की अतृप्त लालसाएँ
जिसके लिए मनुष्य ने
खोखले स्वयं से
कभी घुणा नही की
स्वयं की सीमाओं को तोड़ना
चाहा है
शायद उसने
प्रत्येक जीवन के बाद
साँझ को नहीं चाहा
जिसके प्रकृति के नियमानुसार
प्रतिदिन आना है -
एक नई सुबह के
आगमन को ।